॥ श्रीहरिः ॥

382▲

सिनेमा —
मनोरंजन या विनाशका साधन ?

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

सिनेमा—

मनोरञ्जन या विनाशका साधन

इधर हमारे पास सिनेमासे होनेवाले भीषण परिणामोंके सम्बन्धमें कई पत्र आये हैं। दिल्लीके एक सज्जन लिखते हैं—'मैं साधारण मनुष्य हूँ, इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किया हुआ तपस्वी—योगी नहीं; तथापि जहाँतक बनता है, बुराईसे अपनेको बचाना चाहता हूँ। पर क्या करूँ—दिल्लीकी गली-गलीमें सिनेमा-अभिनेत्रियोंके भाँति-भाँतिके नाट्य करते हुए चित्र दीवालोंपर चिपके हैं; उनमें उनके रूपकी हाट-सी लगी है, कई-कई तो अश्लील भी हैं। उन्हें देख-देखकर मेरे मनमें बहुत बुरी-बुरी वासनाएँ पैदा होती हैं—वैसे ही सपने आते हैं। ××× मैं क्या करूँ, बड़ा ही परेशान हूँ—मेरे-जैसे हजारों-लाखों होंगे। क्या सरकार इसके

लिये कुछ नहीं कर सकती ? क्या कलाके नामपर इसी तरह प्रजाजनोंका मानस-पतन सरकारको इष्ट है? क्या उन सिनेमा-अभिनेत्रियोंके माता-पिता या अभिभावक इस बातको जरा भी घृणित नहीं मानते कि उनकी पुत्रियोंके शृङ्गारभरे चित्रोंका यों गली-गली प्रचार हो और वे लाखों मनुष्योंकी पापदृष्टि और पापभावनाकी शिकार बनें एवं लाखों युवकोंके मनोंमें कलुषित पापभावनाको उत्पन्न करके उनके मूल्यवान् जीवनके सर्वनाशका कारण बनें। यह मनोरञ्जनकी सामग्री है या मानसिक पतनकी? ××× आप उपाय बताइये, मैं क्या करूँ ××××।'

ऐसे कई पत्र और मिले हैं। पिछले दिनों एक पत्र एक कॉलेजके विद्यार्थीका मिला था। बड़े साइजके लगभग १३।। पृष्ठका पत्र है। उसमें सिनेमाके परिणामस्वरूप उस युवकका कैसा, कितना और किस प्रकार पतन हुआ, इसका मर्मभेदी

उल्लेख है। पत्रमें लिखी घटनाएँ ऐसी बीभत्स और भयानक हैं कि उनका प्रकाशित करना—कम-से-कम 'कल्याण'-सरीखे पत्रमें सम्भव नहीं। घटनाओंकी बातें छोड़कर उस पत्रके यत्र-तत्रके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं।

"××× मैं कॉलेजका एक नवयुवक विद्यार्थी हूँ। ××× मेरे पिताजी गरीब हैं, लेकिन मैं इकलौता लड़का हूँ, इसलिये वे मुझे कॉलेजमें पढ़ाते हैं। पिताजीका मुझपर यह एतबार है कि 'मेरा पुत्र होनहार है' लेकिन ×××। मैं सिनेमाका एक जबरदस्त शौकीन हूँ××। दारूके व्यसनके समान यह व्यसन है। ×× जब पैसा नहीं होता, तब किताबें बेचकर क्षणिक सुख (सिनेमा-दर्शन) प्राप्त करता हूँ। ××× माता-पिताको भुलाकर फिरसे किताबें खरीदता हूँ। बेचारे पिता समझते हैं— 'कालेजकी पढ़ाई बड़ी ऊँची होती है, अतः किताबें जरूर लगती होंगी?' ××× मेरे

पिताजी कौड़ी-कौड़ी जमा करके मुझे पढ़ा रहे हैं। मेरे बाबत उन्हें बड़ी उम्मीदें हैं; पर ये सारी उम्मीदें डूब जायँगी। ××× माता-पिताजी शोक करेंगे ! हमेशा सुरैया, ×××××× राजकपूर, उषाकिरन, दुर्गा खोटे, बेबी शकुन्तला, शकुन्तला आगा, उल्लास, जयश्री, दिलीप कुमार (सब मिलाकर ३२ नाम लिखे हैं) ×××× ऐसे कितने ही नट-नटियोंके नाम मेरे मुखमें रहते हैं। आजतक करीब ३०० सिनेमा मैंने देखे हैं ××××। सिनेमा विज्ञानकी एक देन है। लेकिन हमारे निर्माता (पोड्यूसर) आदि उसका दुरुपयोग कर रहे हैं। ××× मेरे शरीर और मनका घोर पतन हो चुका है ! मैं पड़ोसी बहिनको बहिन और माताकी बहिनको मौसी कहनेलायक नहीं हूँ। (इसके बाद शारीरिक और मानसिक घोर पतनके बहुत-से अत्यन्त बीभत्स और भीषण उदाहरण दिये हैं।) ××× मेरी पढ़ाई खत्म हो गयी है। मैं

सिनेमाकी बलि होता जा रहा हूँ। ××× (इसके बाद चित्रोंके नाम दे-देकर उनमें नटियोंके द्वारा दिखाये जानेवाले अङ्ग-संचालनके तथा कामोत्तेजक दृश्योंके बीभत्स उदाहरण दिये हैं।) ××××"

"हमारे आधुनिक हिंदी सिनेमामें सिर्फ नटियोंको नग्नावस्थामें दिखलाना ही शेष रह गया है। अंग्रेजी सिनेमामें तो वह भी दिखाया जाता है। ××××"

आगे चलकर वह नवयुवक लिखता है— "यह सब लिखनेका मतलब यह है कि हमारी सरकार इन बातोंपर ध्यान क्यों नहीं देती ? क्या उसका यह कर्तव्य नहीं होता ? सेंसरबोर्ड क्यों इजाजत देता है, समझमें नहीं आता। ××× हम नवयुवक बहुत ही बुरी स्थितिमें हैं। हमारे चारों ओर प्रलोभन है, मन-इन्द्रियाँ काबूमें नहीं, कोई हमें बचानेवाला नहीं। यह हालत मेरे-जैसे बहुतोंकी है। ×××" यों अपनेको सिनेमाकी बुराइयोंका बुरी

तरह शिकार होना विस्तारसे बतलाकर अन्तमें नवयुवक भाई लिखता है—

"इसी तरह मैं और थोड़ा लिखना चाहता हूँ, क्षमा करें। हमारे लेखकगण भी कामोत्तेजक पुस्तकें लिखते हैं। (एक लेखकका नाम दिया है) उनकी ××××पुस्तक इसका प्रमाण है। उसमें ऐसा वर्णन है कि पढ़नेसे जरूर शुक्र-नाश हो जाता है।"

"हमारे युवकोंके आस-पास ऐसी विचित्र परिस्थिति आ पड़ी है कि उससे हम हरगिज छुटकारा नहीं पा सकते। अतः मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि मुझे इससे कैसे छुटकारा मिलेगा? क्या आप कुछ बता सकेंगे? क्या आप तसल्लीबक्श जवाब दे सकेंगे? क्या आप हमलोगोंको सुपथपर ला सकेंगे ?"

"क्या बताऊँ, कॉलेजके अध्यापकगण भी कुछ नहीं कहते ×××× कुछ प्रोफेसर अच्छे भी

होते हैं, पर बहुत कम।×××"

"हमारे एक प्रोफेसरने समस्त विद्यार्थियोंके सामने लेक्चरमें कहा था कि अपने पतिके ×× से संतति न हो तो [औरतोंको] किसीसे भी ××× पाप नहीं है। क्या हम-जैसे नवयुवक तथा नवयुवतियोंके सामने ऐसा कहना उचित है? [जिस समय प्रोफेसरने ऐसा कहा] उस समय सब विद्यार्थी युवतियोंकी तरफ देखने लगे। उनके देखनेका कौन-सा मतलब हो सकता है? ×××—"

इसके आगे कई पंक्तियाँ और लिखकर विद्यार्थी बड़े निराशाभरे शब्दोंमें अपने पत्रको पूरा करता है।

किसी उच्च अधिकारीके सामने इस प्रश्नके लाये जानेपर यह कहा गया कि "बात ठीक है, पर 'मनोरञ्जन' के लिये क्या व्यवस्था की जाय। मनोरञ्जनकी कोई-न-कोई व्यवस्था किये बिना

सिनेमाका त्याग सम्भव नहीं।" बात बहुत ठीक है। 'मनोरञ्जन' का प्रश्न इस समय बहुत महत्त्वका हो गया है। घर-द्वार फूँककर, धर्म-कर्म खोकर, शील-संकोच और लज्जा-मर्यादाका नाश करके भी 'मनोरञ्जन' करना है। 'मनोरञ्जन' का इस प्रकारका यह महारोग बहुत नवीन है, पर यह बहुत ही व्यापक हो गया है। राजरोग न ठहरा! अतः उन अधिकारी महोदयका कथन सर्वथा सत्य है। सचमुच सिनेमाका हमारे युवक-युवतियोंपर इतना गहरा प्रभाव है कि सरकार कहीं सिनेमा बंद करनेकी सोचे तो इतना घोर प्रतिवाद हो कि सरकारको लेने-के-देने पड़ जायँ। यह सब सच होते हुए भी **क्या यह वाञ्छनीय है कि मनोरञ्जनके नामपर सिनेमाके इस पापको यों ही उत्तरोत्तर बढ़ने दिया जाय और हमारा तरुणसमाज उसका बुरी तरह शिकार होकर अपने जीवनसे हाथ धो बैठे और हमारे राष्ट्रका भविष्य अन्धकारमय हो**

जाय? इस प्रश्नपर बड़ी ही गम्भीरतासे विचार करना होगा।

कुछ वर्षों पहले किसी तामिळ पत्रके सम्पादकको किसी 'सिनेमा-स्टार' के बाबत अश्लील बातें प्रकाशित करनेके अपराधमें मद्रासके चीफ प्रेसीडेंसी मैजिस्ट्रेटने जुर्मानेका दण्ड देते हुए कहा था—

'अश्लीलताके प्रचारमें जब सिनेमा-संस्थाके साथ अपराधीकी तुलना की जाती है तब उसका अपराध उसकी अपेक्षा साधारण-सा प्रतीत होता है। सिनेमा वर्तमान युगका एक अभिशाप है। उसने माननीय कुलोंकी हजारों कुमारियोंको नाचनेवाली वेश्या और लड़कोंको भाँड़ बना दिया है और उन्हें लाज-शर्म तथा सम्मानके गुणोंसे रहित कर दिया है। सिनेमाका शिक्षा तथा नीति-सम्बन्धी जो कुछ भी मूल्य बतलाया जाता है, वह असलमें इसकी बीभत्सताको ढकनेके लिये है। सिनेमा चलानेवालोंको सामाजिक या

नैतिक सुधारकी चिन्ता नहीं है, उनका लक्ष्य तो केवल रुपये कमाना है।'

मैजिस्ट्रेट महोदयका एक-एक अक्षर मनन करनेयोग्य है और यह प्रेरणा देनेवाला है कि इस सम्बन्धमें यदि उदासीनता रही तो समाजकी बड़ी दुर्दशा हो जायगी।

चित्रोंमें कुछ अवश्य अच्छे भी होंगे और यदि इस संस्थाका समाजके लाभकी दृष्टिसे सुसंचालन और सदुपयोग हो तो इससे किसी अंशमें समाजका लाभ भी हो सकता है। सिनेमामें यदि अभिनेत्री (ऐक्ट्रेस) न रहें और पुरुषोंके द्वारा ही नारीका भी अभिनय कराया जाय तथा फिल्ममें किसी प्रकार भी एक भी नैतिक पतन करनेवाला दृश्य, गायन और वार्तालाप न हो तो फिर हानिकी कोई वैसी बात नहीं रहेगी, पर यह होना इस समय तो असम्भव-सा ही है। लोग कहेंगे, फिर तो कोई आकर्षण ही नहीं रह जायगा। बात ठीक है। इस

पतनके गर्तमें गिरानेवाले आकर्षणको ही तो मिटाना है। तभी इसका समाज-हितकारीरूप होगा और तभी सदुपयोग भी होगा, परंतु रूप और रुपयेपर मोहित लोग—संचालक, निर्माणकर्त्ता, दर्शक और सेंसर कोई भी इसे क्यों मानेंगे। वे तो इसे मनोरञ्जन ही बतायेंगे और जनताको हर तरहसे इसका लाभ समझाकर अपना स्वार्थ साधना चाहेंगे !!

सिनेमासे लोगोंने चोरीकी नयी-नयी कलाएँ सीखीं, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जता सीखी और भीषण व्यभिचार सीखा। सिनेमाके कारण हमारे युवक-युवतियोंमें किस प्रकार यथेच्छाचार बढ़ रहा है, इसके कई सच्चे उदाहरण तो हमारे सामने हैं। पता नहीं, लाखों-करोड़ों कितने तरुण-तरुणियोंपर इसका जहरीला असर हुआ है। फिर भी हम इसे 'मनोरञ्जन' ही मानते हैं। उस दिन नागपुरके 'युगधर्म' में श्रीगोविन्दजी

श्रीवास्तवका एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसका कुछ अंश यह है—

"जो लोग यह समझते हैं कि **सिनेमा केवल मनोरञ्जनकी एक वस्तु एवं तरोताजगीका एक साधनमात्र है, वे मेरी दृष्टिमें कुछ हदतक भूल करते हैं।** जिसका प्रभाव हमारे देशके बालकों एवं तरुणोंपर पूर्णरूपेण पड़ रहा हो, उसे मनोरञ्जनकी वस्तु, दिलबहलावका साधन तथा रिफ्रेशमेंट कहना बुद्धिमानीका लक्षण नहीं है; जब कोई क्रिया जीवनपर यथेष्ट प्रभाव डालनेवाली हो जाती है, तब वह मनोरञ्जन न होकर संस्कार बन जाती है। मनोरञ्जन कुछ ही समयके लिये होता है और बादमें भुला दिया जाता है, उसके प्रभावमें स्थायित्वका अभाव रहता है। प्रतिदिन दाल-रोटी खाते-खाते हमें केवल रुचिपरिवर्तनके लिये कभी मिठाई खानी पड़ती है। एक समय था, जब सिनेमा मनोरञ्जनके साधनोंमें गिना जाता होगा,

परंतु आज उसका असर यत्र-तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। आज सिनेमा जीवनपर संस्कार करनेका एक स्थायी एवं आकर्षक साधन है। अनुभव तो यह कहता है कि जो शिक्षा तथा संस्कार माता-पिता अपने पुत्रपर और शिक्षक अपने शिष्यपर नहीं डाल सकते, वे ही और उनसे कहीं बढ़कर यह छायादार, रंग-बिरंगी कुछ ही घंटोंकी दुनिया उनपर डाल देती है। वे भी वैसी ही दुनियामें विचरण करना प्रारम्भ कर देते हैं। आखिर ऐसा क्यों ? इसके सैद्धान्तिक कारणकी हमें खोज करनी चाहिये।

"**आज दुनियामें केवल तीन बातोंका संघर्ष हो रहा है। रूप, रुपया और प्रभुत्व। मानो ये तीन ही समस्याएँ दुनियामें सब राष्ट्रोंके समक्ष हैं। कहना न होगा कि इस दौड़में भारत अभी पीछे है, न मालूम किनके पुण्यकार्योंके कारण।** परंतु उसका हिस्सा भी इस दौड़में अवश्य है। भारत

प्रारम्भसे ही अध्यात्मवादी देश रहा है। उसने रोटी और सेक्सकी समस्याको बादमें और धर्म तथा संस्कृतिको पहले स्वीकार किया है। भारतवासी प्रकृति अथवा मायावी शक्तिके भी ऊपर जो एक अखण्ड ब्रह्मकी शक्ति है, उसमें विश्वास करनेवाले प्राणी हैं। आज भारतमें भी उसी मायाका प्रभाव सब स्थानोंमें परिलक्षित है।''

''तात्पर्य यह है कि यदि सारी दुनियामें यथार्थवादी सिद्धान्तोंकी आपसमें होड़-सी लगी है तो भारतमें आदर्शवाद और यथार्थवादका संघर्ष मचा है। यदि ध्यानपूर्वक मनन किया जाय तो केवल सिने-कलामें ही क्या, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रोंतकमें आदर्श और यथार्थमें अव्यक्तरूपसे संघर्ष हो रहा है। भारतके समस्त वामपंथी दल कट्टर यथार्थवादी हैं, जो धर्म, संस्कृति, आचरण और आदर्शको नगण्य समझते हैं और दक्षिणपंथी दलोंमें अधिकांश आदर्शवादी

हैं, जिन्हें सभ्यता, संस्कृति और धर्मरक्षाकी चिन्ता है। काँग्रेसका किधर रुख है, कहा नहीं जा सकता। गाँधीवादी काँग्रेस अध्यात्मवादी थी। आजकी काँग्रेस आदर्श और यथार्थके बीचमें है और इसी कारण न तो आजके राजनीतिका रंगमंचपर उसका दक्षिणपंथी दलोंसे सहयोग हो सकता है और न वामपंथी दलोंसे।

''सिने-कलाका यही हाल है। **प्राचीन कालसे चली आयी हुई आदर्श परम्पराओंको रूढ़िवादी और आडम्बरयुक्त कहकर अनेक चित्रोंमें उनपर जमकर प्रहार किया जाता है। और यह सब होता है कलाके नामपर। प्रत्येक चित्रपटमें भौतिक तथा शारीरिक सौन्दर्यका चतुर्मुखी स्पष्टीकरण किया जाता है।** शायद, आजका कलाकार इसीके दिग्दर्शनमें व्यस्त है, परंतु यह सेक्स-समस्याका सही मानेमें हल नहीं है। आजकी अनेक प्रसिद्ध तारिकाएँ अविवाहिता हैं। क्या विवाह शारीरिक

सौन्दर्यवृद्धिमें बाधक है और क्या शारीरिक सौन्दर्य भी स्थायी है? कदाचित् इन कलाकारों और तारिकाओंके मतमें स्वच्छन्द रहना और सामाजिक बन्धनोंको तोड़ना सुखी जीवनका प्रमाण हो।

"प्रत्येक चित्रमें ऐन्द्रियिक तत्त्वोंको गुदगुदानेवाली, उद्दाम वासनाको प्रदीप्त करनेवाली सामग्री भरपूर रहती है, जिसका स्पष्ट परिणाम दर्शकोंके मनपर पड़ता है। वे इसे मनोरञ्जन समझकर टाल नहीं देते।

"इसे मनोरञ्जन कहना स्वतःको धोखा देना है। यह असंयमित वासना ही समस्त दुःखों और क्रोधके मूलमें काम करती है। इसका परिणाम यह होता है कि सिने-कलाकारका अत्यन्त परिश्रमसे तैयार किया हुआ चित्र अधिकांश दर्शकोंके लिये वासनामय सिद्ध हो जाता है। जनता इतनी तो समझदार और सूक्ष्मदर्शी नहीं होती कि वह

चित्रका सार भाग ग्रहण करे और निरर्थक छोड़ दे। उसे तो जहाँ भड़कीले और उत्तेजनापूर्ण चित्र दिखे, वह उनपर लट्टू हो जाती है। अच्छे-अच्छे पढ़े-लिखे लोगोंका यही हाल है। कलाकारका सारा परिश्रम, सारी शक्तिका परिणाम दर्शकोंकी वासना उद्दीप्त करनेका एक खिलवाड़ बन जाता है।''

सिनेमाका असर हमारे दैनिक जीवनपर भी बुरी तरह पड़ रहा है। हमारे कपड़े-लत्ते और हमारी घरकी पोशाकमें हमारे नवयुवक तथा नवयुवतियाँ सिनेमाके नट-नटियोंको आदर्श मानने लगी हैं। उस दिन 'सन्मार्ग' में छपा था कि—

'पत्रिका' के कार्यालयके प्रतिनिधिका कहना है कि सिनेमा-उद्योगने हमारे देशके युवकों एवं युवतियोंके हृदयमें कितना स्थान बना लिया है और उनकी रुचियोंको किस प्रकार प्रभावित कर दिया है, इसका पता आजकल बाजारोंमें कपड़ेकी

दूकानोंका निरीक्षण करनेपर ही लगता है। आँखों और कानोंको इन बदलती स्थितिपर सहसा विश्वास नहीं होता !

सिने-संसारके सितारे युवकों और युवतियोंकी रुचियोंका निर्देशन एक अरसेसे करते आ रहे हैं। सिने-संसारकी तारिकाओंकी साड़ियों और ब्लाउजोंका फैशन सभ्य समाजकी महिलाएँ अपनाने लगी हैं। सिनेमाके प्रेमियोंमें कुछ लोग ऐसे हैं जो केवल अभिनेता और अभिनेत्रियोंके पहनावे, शृङ्गार आदिको ही देखने सिनेमाघर जाते और उन्हींका अनुकरण भी करते हैं। कुछ युवक ऐसे भी मिलते हैं जो राजकपूर, दिलीपकुमार और देवानन्दको ही अपना मार्ग-प्रदर्शक मानते हैं। अब अनेक युवक दिलीपकुमारके बेतुके बालों और राजकपूरके बरसाती पाजामातकका अनुकरण करने लगे हैं।

जिन कपड़ोंको सुरुचिपूर्ण महिलाएँ भी आज पहनते लज्जाका अनुभव करती हैं, उन्हें धारणकर

हमारे युवक गर्वसे सीना तानकर निकलते हैं, यह सिनेमाकी ही देन है। आजकल लिहाफ और परदेके कपड़ोंके बुश-शर्ट तेजीसे चल पड़े हैं। यही नहीं, **यह रुचि इतनी आगे बढ़ चुकी है कि 'आवारा' और 'बरसात' बुश-शर्ट भी निकल पड़े हैं। इन कपड़ोंपर 'आवारा' और 'बरसात' के प्रमुख दृश्य अङ्कित होते हैं। इस प्रकार सिनेमाके पोस्टरों-सा अपने कपड़ोंपर विज्ञापन लेकर चलनेवाले युवकोंको देख समाजके भविष्यका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। युवतियाँ भी अपने प्रिय सितारोंद्वारा प्रयोगमें लायी जानेवाली साड़ियाँ और ब्लाउज पसंद करने लगी हैं।** ×××× बाजारोंमें किसी भी फैंसी कपड़ेकी दूकानपर पूछनेपर ज्ञात होगा कि सिने-सितारोंके नामपर वस्त्रोंका निर्माण होने लगा है। कुछ नये प्रकारके कपड़े निकल पड़े हैं। 'मधुबाला' ढाई-तीन रुपये, 'नरगिस' तीन रुपये, 'सुरैया'

ढाई रुपये और डेढ़ रुपये प्रतिगजतक मिलती है। 'मधुबाला' साड़ी सितारे-टकी बेंगलोरकी साड़ीका नाम है। 'नरगिस' साड़ी सादी मैसूरकी बनी होती है, जिसके किनारेपर सुनहली कढ़ाईका काम होता है। 'सुरैया' साड़ी काली लिलनकी जिसपर लम्बी, लाल-पीली-हरी धारियाँ होती हैं।

एक पंजाबी वस्त्र-विक्रेताने बताया कि सिने-सितारोंके नामपर कपड़े बहुत जल्दी बिकते हैं ! 'आवारा' और 'बरसात'के नामसे भी कपड़े बिक रहे हैं। इस प्रकार फिल्मी सितारे आजकल फिल्म ही नहीं, कपड़ा भी बेचने लगे हैं। अनजाने ही ये सितारे हमारे सामाजिक जीवनके भाग्यका भी क्रय-विक्रय कर रहे हैं !

फिल्म-उद्योग, जिसे हमारे राष्ट्रनायक देशके सांस्कृतिक जीवनका शृङ्गार बनाना चाहते हैं। हमारी रुचियोंमें किस प्रकारकी अराजकता उत्पन्न कर रहा है, इसका कुछ आभास उपर्युक्त वर्णनसे

मिल सकता है। **यदि यही स्थिति बनी रही तो भविष्यकी उच्छृङ्खलता और समाजविरोधी अराजकताका भी पूर्ण आभास हमें मिल जायगा। आखिर यह कुरुचिपूर्ण फैशनपरस्ती हमारे तरुण-तरुणियोंको अब किधर ले जायगी !**

इससे सिनेमाके प्रभावकी गहराईका पता लगता है और यह भी पता लगता है कि हमारी मनोवृत्ति किस प्रकारसे बिगड़ती जा रही है। मनुष्यकी मनोवृत्ति बदल जानेपर जब उसकी बुद्धि बुरेको भला मान लेती है, तब बुराईके छूटनेमें बड़ी ही कठिनता होती है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। कुछ ही समय पहले हमारे सम्भ्रान्त कुलकी कन्या अपना स्वरूप, सौन्दर्य दिखलाना महापाप मानती थी। उसके सौन्दर्यका प्रकाशन उसके शीलका अपमान था और वह उसके लिये असह्य था। पर आज उन्हीं आर्य-कन्याओंके हृदयोंमें अपने सौन्दर्यका सचित्र विज्ञापन करनेकी कुत्सित लालसा जाग

उठी है (अब तो दुर्भाग्यवश भारतवर्षमें सौन्दर्य-प्रतियोगिता भी प्रारम्भ हो गयी है और हमारी कुल-ललनाएँ पर-पुरुषोंके द्वारा सौन्दर्यकी परीक्षा कराकर उसमें नम्बर प्राप्त करती हैं !) और आज वे ही सिनेमा-स्टूडियो आदिमें पर-पुरुषोंके (जिनमें शायद ही कोई इन्द्रियविजयी शुकदेव हों) साथ मिलने-जुलने तथा तरह-तरहकी भावभंगियाँ दिखलाकर अपने शीलका उपहास करनेमें गौरव मानने लगी हैं। उन माता-पिताओंको गहराईसे सोचना चाहिये कि जो स्वार्थ, लोभ या नासमझीके कारण अपनी कुल-कन्याओंको सिनेमा-अभिनेत्री बनने भेजकर कितना बड़ा पाप कर रहे हैं और उन माता-पिताओंकी नासमझीपर भी तरस आता है, जो छोटे-छोटे कोमलमति निर्दोष बालक-बालिकाओंको सिनेमा दिखलाने ले जाते हैं और उनमें सिनेमाकी विषभरी शौक पैदा करके उनके जीवनको बिगाड़नेमें कारण बनते हैं। अपने प्यारे

बच्चोंको हँसते-हँसते इस दारुण विनाशके गंदे अग्निकुण्डमें झोंकनेवाले इन माता-पिताओंको क्या कहा जाय?

कुछ लोगोंका तर्क है कि 'धार्मिक सिनेमा देखनेमें क्या आपत्ति है?' आपत्ति वही है कि 'बूढ़ेके मरनेमें तो कोई बात नहीं, पर मौत घर जो देख गयी।' जहाँ देखनेका चसका लगा कि फिर धार्मिक-अधार्मिककी कौन छान-बीन करेगा? और जहाँ एक बार विषयोत्तेजक अभिनय देखा कि फिर तो वैसे ही अभिनय देखनेकी प्रबल इच्छा होगी। कारण प्रत्यक्ष है—बुराईका जितना शीघ्र ग्रहण होता है, उतना भलाईका नहीं होता। फिर जबतक सिनेमाओंमें इन कथित कुमारियोंका अभिनय है, तबतक वे धार्मिक होते हुए भी मनमें सहज ही विकार पैदा करनेवाले होनेके कारण सर्वथा अधार्मिक ही हैं। एक बुराई और है—जिस प्रकार हमारे तरुण भाई अभिनेत्रियोंपर पाप-बुद्धि करते

हैं, उसी प्रकार हमारी कुल-शीलवती निर्दोष बहिनोंके मनोंपर भी पुरुष अभिनेताओंका विविध प्रकारसे प्रभाव पड़ता है और कम-से-कम वे अपने पतियोंको उन्हींके रंग-रूपमें देखना चाहती हैं। यह जान-बूझकर जहर मिले लड्डू खाने या स्वर्ग समझकर भीषण नरककुण्डमें गिरनेके समान ही मोहका कृत्य है। हमारा यह शौक वस्तुतः महान् शोकका कारण होगा।

अन्तमें हमारी अपने पाठक-पाठिकाओंसे यह विनीत प्रार्थना है कि वे मनोरञ्जनके प्रलोभनमें पड़कर सिनेमा न देखें, कैसी भी फिल्म क्यों न हो, सभीमें दोष उत्पन्न होनेका डर है। बहुत सोच-विचार करनेके बाद ही यह प्रार्थना की गयी है कि लोक-परलोकमें कल्याण चाहनेवाले नर-नारियोंको सिनेमा बिलकुल नहीं देखना चाहिये, न अपने बच्चोंको दिखाना चाहिये और न उनमें देखनेकी शौक पैदा करनी चाहिये। कम-से-कम

परमार्थके मार्गमें तो यह बहुत बड़ा विघ्न है।

अभी गत अप्रैल सन् १९५२ में 'बालकोंके लिये प्रेस रेडियो' और 'सिनेमा' पर विचार करनेके लिये यूनेस्कोका एक सम्मेलन मिलानमें हुआ था, जिसमें वैज्ञानिक, पार्लियामेंटके सदस्य और धाराशास्त्री शामिल थे। इसमें ब्रिटेन, भारत, स्वीडन, जर्मनी, हालैंड, फ्रांस, स्विटजरलैण्ड, स्पेन और अमेरिका आदि चौबीस देशोंके प्रतिनिधि उपस्थित थे। इसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि सिनेमाके चित्रोंके विषयमें एक दूसरी अन्ताराष्ट्रिय सामयिक योजना की जाय, जिसकी शाखाएँ यूनेस्कोमें शामिल सारे देशोंमें हो। यह समिति सिनेमाके तसवीरोंकी जाँच करे और सिफारिश करे कि उसमेंसे बच्चों और किशोरोंको कौन-सी दिखायी जाय और कौन-सी नहीं।

इससे यह तो पता चलता है कि सिनेमासे बच्चे और किशोर बुरी बातें सीखते हैं, पर यदि

कोई बुरी बात है तो वह सबके लिये ही होना चाहिये। फिर यहाँ तो बच्चे तथा माँ-बाप साथ ही सब देखते हैं अतएव जिससे बुरा असर पड़ता हो, जिसे पिता अपने पुत्री-पुत्रके सामने, माता अपने बच्चोंके सामने, भाई अपनी बहिनके सामने निःसंकोच न पढ़ सके, न रख सके, ऐसी कोई भी बात न तो किसी नाटक या अभिनयमें होनी चाहिये और न सिनेमाके प्रदर्शनमें ही; पर यह तभी हो सकता है, जब मिथ्या रूप और रुपयेकी वासना कम हो। अस्तु।

यह ठीक है कि हमारे इतने लिखनेसे न तो सिनेमा-संसारपर कोई खास असर होगा, न सरकारके ही कानपर जूँ रेंगेगी तथा न इससे 'मनोरञ्जन' माननेवाले शौकीन नर-नारी ही अपना मत पलटेंगे, तथापि हमारे पाठक-पाठिकाओंको 'कल्याण'-परिवारके सदस्य मानकर हम उनसे बार-बार इतनी प्रार्थना तो अवश्य करेंगे कि वे

जहाँतक बने '**सिनेमा देखना बिलकुल छोड़ दें और हमें आशा है कि बहुत-से पाठक-पाठिका हमारी प्रार्थनापर ध्यान भी देंगे।**'

साथ ही हमारी सेंसर बोर्डसे प्रार्थना है कि जहाँतक बने उन फिल्मोंको तो वह कदापि स्वीकृति न करे, जिनमें नैतिक पतन करानेवाले दृश्य, गायन और वार्तालाप हों, जिनमें नटियोंके द्वारा किये गये अंगसंचालनके गंदे दृश्य हों और जिनमें किसीकी भी धार्मिक भावनापर आघात करनेवाली चीजें हों!

जगत् पतन तथा दुःखकी ओर जा रहा है

सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिल गया। विलम्बसे उत्तर जा रहा है क्षमा करें। मनुष्य जो यह चाहता है कि 'पहले प्रतिपक्षी मेरे साथ अच्छा बर्ताव करेगा, तब मैं उसके साथ अच्छा बर्ताव करूँगा।' यह उसकी भूल है; क्योंकि जैसा वह चाहता है, वैसा ही उसका प्रतिपक्षी भी चाहता होगा। फिर अच्छाईकी पहल कौन करेगा? बुद्धिमानी तो इसीमें है कि दूसरा बुरा करे, तब भी हम तो उसका भला ही करें। भलाईकी पहल करनेमें संकोच और लज्जा होना तो पाप-बुद्धिका ही परिचायक है। वस्तुतः कल्याणकारी पुरुषको कभी भी किसीके साथ असत् व्यवहार करना ही नहीं चाहिये। कोई मेरे साथ बुराई करता है, इसलिये बुराईको बुराई मानता और कहता हुआ

भी अभिमानवश मैं भी उसके प्रति बुराई करूँ; दूसरा जहर खाता है तो मैं भी खाऊँ—यह कोई समझदारीकी बात नहीं है। भला मनुष्य अपनी भलाईको कैसे छोड़े? वह अपने स्वभावसे क्यों च्युत हो? असलमें अपना स्वार्थ भी भलाई करनेमें ही है। प्रत्येक मनुष्यके लिये यही बात है। फिर जो परमार्थके साधक हैं, उनको तो संतोंका आदर्श ग्रहण करना चाहिये। श्रीरामचरितमानसमें भगवान् श्रीशंकरजीके वचन हैं—

'उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥'

संतकी यही महिमा है कि वह बुराई करनेपर भी उसके साथ भलाई करता है।' फिर उन्होंने चन्दनकी उपमा देकर समझाया है—जो कुठार चन्दनको काटता है, चन्दन उस कुठारकी लकड़ीकी मुठमें अपना गुण सुगन्धि भर देता है—

'काटइ परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगंध बसाई॥'

इसलिये बुराई करनेवालेके साथ भलाई ही

करनी चाहिये और सात्त्विक साहसके साथ उसकी पहल भी अपनी ओरसे ही होनी चाहिये। इसमें जरा भी संकोच या अपमानका बोध नहीं होना चाहिये। इस अपमानका यदि पुरस्कार प्राप्त करना हो तो भगवान्‌के यहाँसे बड़ा सुन्दर पुरस्कार भी मिल सकता है।

आपने लिखा कि 'विकासवादके सिद्धान्तके अनुसार उत्तरोत्तर उन्नति होनी चाहिये और भौतिक उन्नति हो भी रही है। पर लोगोंके मनोंमें पाप-भावना बढ़ती जा रही है तो क्या भौतिक उन्नतिको ही उन्नति मानना चाहिये और यदि ऐसा नहीं है तो इसका क्या परिणाम होगा?'

इसका उत्तर यह है कि मेरी समझसे तो यह विकासवादका सिद्धान्त ही सर्वथा भ्रमपूर्ण है। कुछ ही सहस्र वर्ष पूर्व जंगलोंमें रहनेवाली असभ्य जातिके लोग वर्तमान भौतिक उन्नतिको देखकर ऐसा कहें तो वे कह सकते हैं; परंतु

भारतवर्षकी अत्यन्त प्राचीन संस्कृतिकी सत्ता और महत्ताको जाननेवाले लोग ऐसा कभी नहीं मान सकते। हमारा तो यह सिद्धान्त है कि अच्छा-बुरा समय चक्रवत् आता-जाता रहता है। सत्ययुगके बाद क्रमशः कलियुग आता है और कलियुगके बाद पुनः सत्ययुग। इस समय कलियुगके प्रारम्भका संधिकाल चल रहा है। अतएव इस समय जगत्की गति वस्तुतः उन्नतिकी ओर नहीं, पर अवनतिकी ओर है। उन्नति-अवनतिकी कसौटी चमत्कारपूर्ण भौतिक साधनोंका आविष्कार नहीं है। उसकी सच्ची कसौटी है समष्टिके मनकी उच्चतम सात्त्विक स्थिति। यदि समष्टिमें गीतोक्त दैवी सम्पत्ति बढ़ रही है तो समझना चाहिये उन्नति हो रही है और आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है तो अवनति हो रही है। भौतिक उन्नतिसे न इसका विरोध है, न मेल। बड़ी-सी-बड़ी भौतिक सम्पत्तिके साथ भी दैवी सम्पत्ति रह सकती है

और भौतिक सम्पत्तिके सर्वथा अभावमें भी आसुरी सम्पति आ सकती है। हमारे प्राचीन युगोंमें भौतिक सम्पत्तिकी पूर्ण प्रचुरता थी; परंतु उसका प्रयोग होता था सात्त्विकभावापन्न पुरुषोंकी सुबुद्धिके द्वारा वास्तविक जनकल्याणकारी कार्योंमें। आजकी भौतिक सम्पत्ति ऐसी नहीं है। अणुशक्तिका आविष्कार भौतिक उन्नतिका एक अद्भुत उदाहरण है, परंतु मनुष्यकी राक्षसी और आसुरी बुद्धिके कारण उसका प्रथम प्रयोग होता है—क्रूरतापूर्ण विपुल जनसंहारमें! आज भी बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंके मस्तिष्क आसुरी बुद्धिकी प्रेरणासे इसी नर-संहारके अनुसंधानमें लगे हैं और इसमें बड़े गर्वका अनुभव कर रहे हैं। आसुरी सम्पत्तिका अवश्यम्भावी परिणाम श्रीभगवान् बतलाते हैं—

अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। १६, १९-२०)

'वे अनेक प्रकारकी कामनाओंसे भ्रमितचित्त हुए, मोहजालमें फँसे हुए और विषयोंमें अत्यन्त आसक्ति रखनेवाले लोग अपवित्र नरकोंमें गिरते हैं।......उन द्वेष-हृदय, क्रूरकर्मा, पापपरायण नराधमोंको मैं संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें गिराता हूँ। अर्जुन! वे मूढ़ मनुष्य (मानव-जीवनके चरम और परम फलस्वरूप) मुझ भगवान्‌को न पाकर कई जन्मोंतक लगातार आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी अधिक बहुत नीची अधम गतिको जाते हैं—नरकाग्निमें पचते हैं।'

इससे यह सहज ही सिद्ध है कि जिस अनुपातसे आसुरी सम्पत्ति बढ़ रही है, उसी अनुपातसे दुःख भी बढ़ेगा। किसी विषयके विचार पहले मनमें आते हैं, फिर वाणीमें और तदनन्तर

वैसा कार्य होता है एवं तब उसीके अनुसार फल होता है। आज जगत्के अधिकांश लोगोंके मनोंमें दम्भ, दर्प, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, प्रतिहिंसा, मान, अभिमान, ईर्षा और असूया आदिके कुत्सित विचार बड़े तेजीसे बढ़ रहे हैं और तदनुसार चोरी, असत्य, लूट, हिंसा, व्यभिचार आदि असत् कार्योंकी मात्रा भी बढ़ रही है। इसी अनुपातसे बीजफल-न्यायके अनुसार इनका भयानक परिणाम भी अवश्य होगा। यहाँ भी दुःख बढ़ेंगे और परलोकमें भी दुःखोंकी ज्वाला अधिक धधकेगी। भीषण दुःखोंकी आगमें जलनेके बाद सम्भव है, कलियुगकी महादशामें भी कुछ समयके लिये सत्ययुग-त्रेताका प्रत्यन्तर आवे। पर उसके पहले एक बार तो भीषण पतन और दुःखोंका आना अनिवार्य-सा प्रतीत होता है।

कुसङ्गका त्याग तुरंत कीजिये

सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। आपने जो बातें लिखी हैं, वे यदि सत्य हैं तो बड़ी भयानक हैं; आजकल छात्र-छात्रा कितना अनर्थ कर रहे हैं; छात्रोंकी यात्राओंमें क्या होता है— इसका पापपूर्ण चित्र आपने खींचा है। आप जो कुछ कर रहे हैं, वह आपके लिये बड़ा ही अशुभ है। उसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। आप जिन दुराचारी, व्यभिचारी छात्रोंको अपना अन्तरङ्ग मित्र मानते हैं और जिन छात्राओंको अपनी सङ्गिनी मानकर जीवनको कलङ्कित करते हैं, वे आपके शत्रु हैं और उनके साथ इस प्रकार पापके गढ़ेमें गिरकर उनके साथ आप भी शत्रुताका ही व्यवहार कर रहे हैं। आप सावधान हो जाइये। इस कुसङ्गको तुरन्त छोड़ दीजिये। आपके भाई आपसे बहुत ठीक कहते हैं। आप कॉलेजको छोड़ दीजिये। दूकानपर भाईके पास बैठिये। ऐसे पापके अड्डेमें रहनेसे तो हानि-ही-हानि है। जब आप 'कल्याण' को पढ़ते हैं, तब

आपको अपने कुकृत्योंपर पश्चात्ताप होता है और आप उनसे छूटनेकी इच्छा करते हैं, पर साथियोंके मिलनेपर फिर वैसे ही कुकर्मोंमें लग जाते हैं—यह आपकी दुर्बलता है। पश्चात्ताप होना तो बहुत शुभ है; परंतु जबतक कुकर्म बनते हैं, तबतक असली पश्चात्ताप कहाँ है। वास्तविक पश्चात्ताप वही है, जो पुनः वैसा कुकर्म न करनेका दृढ़ निश्चय ही नहीं करा दे वरं उसे असम्भव कर दे। भगवान्‌से प्रार्थना कीजिये, मनको दृढ़ बनाइये, बार-बार सत्साहित्यका अध्ययन कीजिये। कुकर्मी साथियोंका परित्याग कीजिये। छात्राओंकी ओर तो देखना भी बड़ा पाप मानिये। उनसे कभी बोलनेकी भी इच्छा मत कीजिये। सिनेमा छोड़िये और भगवानके कृपा-बलपर दृढ़-प्रतिज्ञ होकर पापसे छूट जाइये। यह असम्भव नहीं है। भगवत्कृपा और उसके बलपर आपके सच्चे प्रयत्नसे यह पाप छूट जायगा। कुसङ्ग किसी प्रकारका हो, उसका त्याग तुरंत आवश्यक है। शेष भगवत्कृपा।

सौन्दर्य-प्रसाधनोंसे हानि

प्रिय बहन! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपने लिखा, हमारी भारतीय बहनोंमें भी आज विदेशी शृङ्गारका तथा विदेशी सौन्दर्य-प्रसाधनोंका प्रचार-प्रसार बढ़ रहा है तथा इससे बड़ी हानि हो रही है; यह आपका लिखना ठीक है। जहाँतक गंदगीके त्याग तथा सफाई-सुथराईका प्रश्न है, वहाँतक तो उत्तम है; परंतु विदेशी सङ्गसे जो विदेशीपन तथा कृत्रिम शृङ्गार एवं सौन्दर्य-लिप्सा बढ़ रही है, यह बहुत ही हानिकर है। इसका एक प्रधान कारण आजकलके सिनेमा हैं। सिनेमाकी बुरी बातें पढ़े-लिखे तथा बड़े माने जानेवाले लोगोंमें आती हैं और उनका अनुकरण साधारण जनता करती है। इस सम्बन्धमें बार-बार कहा भी जाता है, पर उसपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। इस प्रकारकी सौन्दर्य-लिप्सासे मानस-व्यभिचार होता है, सुनने-देखनेवालोंमें नीच वृत्तियोंका उदय होता है और उससे उनका

पतन होता है। पापकर्म बनते हैं, जिनसे लोक-परलोक बिगड़ता है, बुरे आदर्शकी स्थापना होती है। इसके अतिरिक्त शारीरिक हानि भी कम नहीं होती। हमलोगोंकी बात तो छोड़िये, कुछ वर्षों पहले इंगेबर्ग नीमांड ऐंडर्सन नामकी एक जर्मन महिला डॉक्टरने इन सौन्दर्य-प्रसाधनोंका हानिकारक प्रभाव बतलाते हुए इन्हें न बतलानेके लिये अनुरोध किया है और कड़ी चेतावनी दी है। वे लिखती हैं—

'सबसे बढ़कर खतरनाक शृङ्गार-प्रसाधन हैं—सुगन्धियाँ, नख-राग (नेल-पालिश), अधर-राग (लिपिस्टिक), आँखोंकी पलकोंको रँगनेके रंग, क्रीम, पेस्ट और पाउडर। बालोंको रँगनेवाली चीजों, खासकर जिनमें पैराफिनाइल एंडियामाइन हो, बालोंके लोशन, त्रिलिऐंटाइन और बालोंके घुँघराले बनानेके लिये काममें आनेवाले थियोग्लारकोल एसिडका भी बुरा असर होता है। इनसे एग्जी, पलकोंकी बीमारी, दृष्टिका धुँधलापन, श्लैष्मिक

झिल्ली-प्रदाह और दमा हो जाता है। प्लास्टिक लगे हारों, कंगनों, झूमकों, हेयर-किल्पों और कंघियोंसे भी बीमारियाँ पैदा होती हैं। ······· इन सौन्दर्य-प्रसाधनोंसे स्वास्थ्यमें विकार आता है।······ये आधुनिक फैशन कितने ही अच्छे क्यों न लगते हों, इनसे काफी हानि होती है। इनका व्यवहार करनेवाली महिलाओं और लड़कियोंको और अपने मूल आकर्षणका मूल्य बादमें विविध रोगोंके रूपमें चुकाना पड़ता है।'

अतएव यह सौन्दर्य-लिप्सा और इसके लिये कृत्रिम साधनोंका प्रयोग जितना ही कम होगा, उतना ही शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य सुधरेगा। इनकी बुराईको समझकर तथा विनय-विनम्र शब्दोंमें दूसरोंको समझाकर इनसे बचने-बचानेका यथासाध्य प्रयत्न सभीको करना चाहिये। आप भी आस-पासकी तथा अपने सम्बन्धवाली बहनोंको समझानेका प्रयत्न कीजिये। शेष भगवत्कृपा।

सिनेमा और फैशनका दुष्परिणाम

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। वर्तमान कालमें सिनेमाके कारण जो महान् पतन हो रहा है और फैशनके लिये हमारी बहू-बेटियोंमें—खास करके पढ़ी-लिखी बहनोंमें जो फिजूलखर्ची बढ़ गयी है तथा उसके कारण जो घोर दुरवस्था हो रही है, उसपर विचार करते ही हृदय काँप उठता है और रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि इसको जीवनका उच्च स्तर या उन्नति बतलाया जाता है। सीता-सावित्रीके देशमें आज स्त्रीका सतीत्व कोई वस्तु ही नहीं रह गया है। पता नहीं, भविष्यमें पतनकी यह परम्परा कितनी नीची जायगी और भारतीय पवित्र संस्कृतिका कितना ह्रास होगा। आपने लिखा, वह ठीक है—

न कला बुरी चीज है, न मनोरञ्जन। बशर्ते कि वे समाज और व्यक्तिके जीवनको उच्च स्तरपर ले जानेवाले हों। जो कला केवल कलाके लिये होती है—समाज तथा व्यक्ति-कल्याणका जिसमें कोई स्थान नहीं होता अथवा जो मनोरञ्जन मनको अनर्गल अवैध विषय-भोगकी ओर प्रेरित करनेवाला होता है, वह 'कला' वस्तुतः 'काल' रूप होती है और वह मनोरञ्जन नारकीय यन्त्रणाकी भूमिका होता है, यह स्मरण रखना चाहिये।

कुछ वर्षों पूर्व बम्बईके कोलाबाक्षेत्रमें पुष्पाभवनपर छापा मारकर पुलिसने एक सिनेमा-अभिनेत्रीको पकड़ा था, जो फैशनकी लालसाको पूरा करनेकी धुन और अपने भविष्यकी ऊँची कल्पनामें पगली लड़कियोंसे जघन्य नीच कार्य करवाती थी। इसके यहाँ कुछ ऐसी फैशनेबल लड़कियाँ रहती हैं, जो पढ़ी-लिखी, सुन्दर, ऊँचे स्वप्न देखनेवाली तथा अच्छे घरानोंसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं।

पुलिसने जासूस नियुक्त करके पूरी छानबीनसे इस अड्डेका पता लगाया और धोबी-तालाबके किसी होटलमें ऐसी ही एक और लड़कीको गिरफ्तार किया । यह समाचार अजमेरसे प्रकाशित साप्ताहिक 'नवज्योति' में छपा था। यह तो एक घटना-प्रसङ्ग है; परंतु देशभरमें कहाँ-कहाँ किस-किस प्रकारसे ऐसे कितने पतनके नये-नये रास्ते निकल रहे हैं, उनकी संख्या ही नहीं है। जिस कला और मनोरञ्जनका यह परिणाम हो, उसकी समाजके कल्याणके लिये आवश्यकता बतायी जाय—इसे हमारे देशके दुर्भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है। हमारे भावी आशास्थल नवयुवक और नवयुवतियोंका कितना घोर पतन हो रहा है—इसपर जरा गम्भीरतासे विचार करनेकी आवश्यकता है। शेष भगवत्कृपा।

सिनेमाके शौकसे सर्वनाश

आपका पत्र मिला। आपको 'सिनेमाका बहुत शौक है' तथा आप 'कलाकी दृष्टिसे अपने बच्चोंको सिनेमाके क्षेत्रमें प्रवेश कराना चाहते हैं'—लिखा सो भाई साहब! आपकी नीयत बुरी न होनेपर भी आपका विचार मेरी समझसे हानिकारक ही है। अभी हालमें किसी तमिल पत्रके सम्पादकको किसी 'सिनेमास्टार' के बाबत अश्लील बातें प्रकाशित करनेके अपराधमें मद्रासके चीफ प्रेसिडेन्सी मैजिस्ट्रेटने जुर्मानेका दण्ड देते हुए कहा है—

'अश्लीलताके प्रचारमें जब सिनेमा-संस्थाके साथ अपराधीकी तुलना की जाती है, तब उसका अपराध उसकी अपेक्षा साधारण-सा प्रतीत होता है। सिनेमा वर्तमान युगका एक अभिशाप है। उसने माननीय कुलोंकी हजारों कुमारियोंको नाचनेवाली वेश्या और लड़कोंको भाँड़ बना दिया है और

उन्हें' लाज-शर्म तथा सम्मानके गुणोंसे रहित कर दिया है। सिनेमाका शिक्षा तथा नीति-सम्बन्धी जो कुछ भी मूल्य बतलाया जाता है, वह असलमें इसकी बीभत्सताको ढकनेके लिये है। सिनेमा चलानेवालोंको सामाजिक या नैतिक सुधार-की चिन्ता नहीं है, उनका लक्ष्य तो केवल रुपये कमाना है!'

यह सत्य है कि किसी भी ऐसी कलाका सदुपयोग किये जानेसे समाजका लाभ हो सकता है। जो काम लेख और व्याख्यानोंसे नहीं होता वह चित्रपटोंसे हो सकता है; परंतु वह होता तभी है, जब संचालकोंका लक्ष्य वैसा हो। आजकल जिस ढङ्गसे सिनेमाका प्रसार हो रहा है, उससे तो हमारे बालक-बालिकाओंकी मनोवृत्ति बिगड़ती ही जा रही है। जो सम्भ्रान्त कुलकी हिन्दू-कन्या अपना स्वरूप-सौन्दर्य दिखलाना महापाप समझती थी, जिसके लिये यह कहा गया है कि स्त्री जब

अपने पतिके पास जाय तभी शृङ्गार करे, अन्य स्थितिमें शृङ्गार ही न करे। जिनके सौन्दर्यका प्रकाशन उनके शीलका अपमान माना जाता था, आज उन्हीं आर्यकन्याओंके हृदयमें अपने सौन्दर्यका सचित्र विज्ञापन करनेकी लालसा जाग उठी है और आज वे ही सिनेमा-स्टूडियो आदिमें पर-पुरुषोंके साथ मिलने-जुलने तथा तरह-तरहकी भावभङ्गिमाएँ दिखलाकर अपना शील खोनेमें गौरव मानने लगी हैं! यह सिनेमाओंके प्रसारका ही दुष्परिणाम है। दुःख तो यह है कि इसीको कलाके क्षेत्रमें प्रगतिके नामसे पुकारा जाता है और क्षमा कीजियेगा आप भी ऐसी ही प्रगतिके भ्रममें पड़कर ऐसी बुरी इच्छा करने लगे हैं।

इधर तो देशमें अन्नके लाले पड़ रहे हैं—लाखों लोग भूखों मर रहे हैं और उधर सिनेमाओंमें जा-जाकर अमीर-गरीब अपना बेहद धन फूँकते हैं और बदलेमें वहाँसे लेकर आते हैं—कुविचार,

कुप्रवृत्ति और कुवासनाएँ। फिर उस धनका कितना दुरुपयोग होता है, कितना मांस, अण्डे, मदिरा और फैशनमें खर्च होता है— इसका हिसाब लगाया जाय तो हृदय काँपने लगता है।

साथ ही धार्मिक भावोंके नर-नारियोंको आकर्षित करनेके लिये हमारे देवी-देवताओंकी, हमारे भगवान् राम और कृष्णकी, हमारी जगज्जननी सीता और राधाकी जब छीछालेदर सिनेमाओंमें की जाती है, हमारी उन प्रातःस्मरणीया और पूजनीया देवियोंका स्वाँग धारण करके जब सिनेमाकी वे कथित कुमारियाँ अश्लील गाती, अर्धनग्न दशामें प्रणय-चेष्टा करती हुई दिखायी जाती हैं, तब तो धर्मभीरु हिन्दूका खून खौल उठता है। परन्तु हम सब कुछ सह रहे हैं और अपने-आपको शौकसे नरक-कुण्डमें ढकेलकर सुखका सपना देख रहे हैं। मेरी आपको जोरसे सलाह है कि आप सिनेमाका शौक छोड़ दीजिये और अपने बालक-बालिकाओंको

उस घृणित क्षेत्रमें प्रवेश करानेकी कल्पनातकको पाप समझकर त्याग दीजिये। आप-जैसे अन्यान्य पिताओंसे भी मेरा यही नम्र निवेदन है।

कड़े शब्द लिखे गये हों तो कृपया क्षमा करें। मेरा हेतु अच्छा है, शब्द चाहे कड़े हों—असलमें कड़वी दवा पिये बिना जोरका बुखार रुकता भी नहीं।

बुरे लगें हितके बचन, हिये बिचारो आप।
कड़वी भेषज बिनु पिये, मिटै न तनकी ताप॥

सिनेमापर बड़े-बड़े लोग क्या कहते हैं ?

आचार्य श्रीविनोबाजी भावे महोदय

(१)

××××फिल्म-निर्माताओंपर प्रतिबन्ध लगाये जाने चाहिये, जिससे कि वे ऐसे फिल्म न बनायें जो समाज और जनताके दिमागको गंदा करते हैं तथा स्वस्थ-साहित्यकी माँग कम कर देते हैं।

यदि हम अपने नौजवानोंको सही रास्तेपर बढ़ने देना और उन्हें स्वस्थ नैतिक चरित्रसे पूर्ण वीर पुरुष बनाना चाहते हैं तो हमें ऐसे साधनोंको खोजना होगा, जो उन्हें मनोरञ्जनके साथ-ही-साथ समुचित शिक्षा भी प्रदान करते हैं।

सभी सच्चे साहित्यिक 'सिनेमाके बढ़ते हुए खतरे' से चिन्तित हैं। पुराने जमानेमें लोग दिनभरके

काम-काजके बाद भजन-कीर्तनमें भाग लेते थे और भगवान्‌के नामका स्मरण करते हुए सोते थे और कोई आश्चर्य नहीं कि वे भले विचारोंके होते थे, सिनेमाका प्रभाव इसके बिलकुल विपरीत है!

(२)

××××स्वराज्य-प्राप्तिके बाद अगर हम अपने चारित्र्यमें शिथिलता आने देंगे तो उसके कमाये हुए स्वराज्यको खोनेकी क्रियाका आरम्भ समझना होगा।

× × ×

मुझे ऐसा मालूम हुआ है कि करीब बीस लाख लोग हर शाम सिनेमा देखते हैं। मुझे पता नहीं कि यह अंदाज कैसे लगाया गया है? लेकिन अगर यह सही है कि बीस लाख लोग हर रोज सिनेमा देखते हैं तो यह स्पष्ट है कि हिंदुस्तानके तरुणोंकी मनोवृत्तिपर उसका देशव्यापी परिणाम होता है। मैंने हिसाब लगाया कि मैं एक सालसे घूम रहा हूँ। रोजाना दो व्याख्यान देता था। इसके

अलावा चर्चाएँ भी होती थीं। तो भी शायद ही बीस लाख लोगोंके कानोंपर मेरा संदेश पहुँच पाया हो। अगर जितना प्रचार मेरे इतने परिश्रमसे एक सालमें हुआ, उतना तो हर रोज शामको इस प्रकार होता रहता है, तो वह कोई मामूली बात नहीं है। इस बातपर ध्यान देना जरूरी हो जाता है।

× × ×

चर्चामें मैंने सुना कि सिनेमा-नियन्त्रणके खिलाफ यह विचार पेश किया जाता है कि 'उससे हमारे विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्यपर आक्रमण होता है। हमारे संविधानमें विचार-स्वातन्त्र्यको हर नागरिकका मौलिक अधिकार समझा गया है। उस अधिकारपर सिनेमा-नियन्त्रणसे आक्रमण होता है'—ऐसा कहा जाता है।

यह सोचनेका ढंग बिलकुल गलत है। विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्यपर आक्रमण तो तब माना जायगा कि जब एक विचार-पंथोंवाले लोग दूसरे विचार-पंथोंवालोंके विचारोंको दबायें। लेकिन

सर्व-सामान्य नीतिमत्ता, शील-संवर्धन और तरुणोंके पुरुषार्थके हितमें यदि सोचा जाय तो इसको स्वातन्त्र्यमें बाधा पहुँचानेवाला मानना गलत होगा। ऐसी मान्यता विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्यको ही न समझनेके बराबर है। **यदि कोई आदमी खुले आम हिंसा, व्यभिचार, शराबखोरीका प्रचार करना चाहे तो क्या हम उसपर डाले हुए नियन्त्रणको विचार-प्रकाशनके स्वातन्त्र्यपर आक्रमण मानेंगे?** और इसमें कोई विशेष सम्प्रदायके विशिष्ट विचारोंको दबानेकी भी बात नहीं है।

× × × ×

अगर हम ऐसे नियमनोंको नहीं मानेंगे तो हमारी आजादी बर्बादीका पर्यायवाची शब्द बन जायगी।

× × × ×

इस विषयमें स्वैरवृत्तिसे कार्य नहीं चलेगा। सिनेमाका नियमन सर्व-सामान्य चरित्रकी दृष्टिसे सदाभिरुचिकी दृष्टिसे तथा भारतीय संस्कृतिकी

दृष्टिसे करना चाहिये। हमारे नियमनकी यह तीन कसौटियाँ होंगी। अगर हम इन कसौटियोंको मान्य रखते हैं और अपने सिनेमाओंका उचित नियमन करते हैं तो इसमें देशका हित है। नहीं तो, **यह समझ लीजिये कि देशकी रक्षा करना मुश्किल हो जायगा। मैं तो मानता हूँ कि उत्तम सेनासे भी अधिक जरूरत दिमागको बहकने न देनेकी तथा उसे शुद्धिके रास्तेपर चलानेकी है।** अगर हम देशकी इस प्रकार रक्षा नहीं करेंगे तो हमारी सेनामें भी पुरुषार्थ नहीं रहेगा। जनरल करिअप्पाने इस बातपर जो कहा है, वह उनकी क्षात्र-वृत्तिके अनुरूप ही है। सिनेमा-नियमनमें ढीलापन करना तो अपनी सरकारके लिये भी योग्य नहीं है। हमारी सरकार तो लोक-कल्याणके लिये बनी है। इसलिये लोक-कल्याणका ध्यान रखते हुए सज्जनोंकी रायको प्रमाण समझकर नियमनका जल्दी-से-जल्दी इन्तजाम करना उसका कर्तव्य हो जाता है।

भारतके प्रथम राष्ट्रपति
डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी

१९ अक्टूबर सन् १९५० को डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीने 'आल इण्डिया मोरल एण्ड सोशल हाइजिन' की कान्फ्रेंसका उद्‌घाटन करते हुए अपने भाषणमें कहा—

आधुनिक चलचित्रोंने साधारणतया सारे समाजपर और विशेषकर युवक बालक-बालिकाओंपर बहुत बुरा प्रभाव डाला है। यदि मुझे अधिकार होता तो इस किस्मके फिल्मोंका दिखाना—जिनसे कामुकताकी प्रवृत्ति बढ़ती है—बंद कर देता, स्वच्छन्दतासे स्त्री-पुरुषोंका मिलन भी—जो हमारी संस्कृतिके विरुद्ध है—बंद कर देता।

[भारत-सरकारके इनफारमेशन और ब्राड-कास्टिंग मन्त्रालयके प्रकाशन-विभागद्वारा प्रकाशित डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजीकी वक्तृताओंके अप्रैल १९५७ के द्वितीय संस्करणके पृष्ठ ६३ से उद्‌धृत।]

मद्रासके वयोज्ञान-वृद्ध मुख्य मन्त्री श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचारी महोदय

(१) मजदूरोंके एक समारोहमें आपने कहा था—'सिनेमा-निर्माता लोग गरीबोंकी कठिन कमाईका शोषण कर रहे हैं और जनताके चरित्रको भ्रष्ट कर रहे हैं। ××× वे मनुष्यकी कमजोरियोंको जानते हैं और गंदे चित्र-निर्माण कर लोगोंकी नीच प्रवृत्तियोंको उत्तेजित कर उन्हें दुर्भाग्यकी ओर प्रेरित करते हैं। यदि श्रमजीवी लोग बार-बार सिनेमा-गृहोंमें नहीं जायँगे तो वे अपना समय परिवारको सुखी बनानेमें लगा सकेंगे।'

(२) छात्रोंको सिनेमा देखनेसे विरत करनेका प्रयास करते हुए आपने कहा—'सिनेमा न देखकर आपलोगोंको अपने घरोंपर रहना अथवा अन्य कोई कार्य करना चाहिये। मैं सिनेमा-व्यवसायका विरोधी होनेके कारण ऐसी बातें नहीं कह रहा हूँ,

बल्कि इसलिये कि आजकलके सिनेमा-चित्र आपके दिमागको सड़ा डालते हैं, इसके कारण आपलोग सदैव इस प्रकारकी बातें सोचने लगते हैं, जो आपको नहीं सोचनी चाहिये। इससे आपका न केवल नैतिक और आत्मिक पतन होगा, प्रत्युत बौद्धिक अवनति भी अवश्यम्भावी है!

उत्तर प्रदेशके महामहिम राज्यपाल श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी महोदय

××प्लेटोने कहा है कि मनुष्य सुन्दर वस्तुओंसे सुन्दर विचारोंकी ओर और सुन्दर विचारोंसे सुन्दर जीवनकी ओर अग्रसर होता है और सुन्दर जीवनसे सर्वनिरपेक्ष परम सौन्दर्यकी ओर बढ़ता है; किंतु हालीउडकी कुत्सित परम्पराके अनुकरणमें बनायी गयी ऐसी वाहियात फिल्में हमें कुत्सित वस्तुओंसे घृण्य विचारोंकी ओर, घृण्य विचारोंसे गर्हित जीवनकी ओर ले जाती हैं। फिर हम गर्हित जीवनसे चरम कुरूपता और बीभत्सताकी ओर बढ़ने लगते हैं। जो स्त्री-पुरुष इस प्रकारके अनैतिक चित्रोंके निर्माणमें योग देते हैं—उनमेंसे अनेक अपने निजी जीवनमें सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्ति होते हैं—क्या उन्होंने कभी यह सोचा है कि वे जनताके सामने और खासकर युवक और

युवतियोंके सामने कैसा गंदा चित्र पेश कर रहे हैं ? और ऐसा वे क्यों करते हैं ? इसका केवल एक ही उत्तर है—मनुष्यकी गंदी-से-गंदी प्रवृत्तियोंको उभाड़कर पैसा कमानेके लिये!

शिक्षाकी दृष्टिसे सिनेमासे एक दूसरा और बड़ा खतरा है। हमारी संस्कृतिमें सत्य और अहिंसाका अन्यतम महत्त्व है। गाँधीजीने इन दोनों तत्त्वोंको हमारी नयी शक्तिका आधार बना दिया है। शान्ति और न्यायके मान्य अग्रदूत हमारे प्रधान मन्त्री नेहरूजी गाँधीजीकी इस विरासतकी रक्षा करनेमें संलग्न हैं और उन्होंने हिंसाके विरुद्ध राष्ट्रको सतर्क रहनेकी चेतावनी दी है; किंतु ऐसे चित्र अपराध और हिंसाको आकर्षक बना देते हैं। रोज-बरोज हजारों सिनेमाघरोंमें लाखों व्यक्तियोंको अपराध, हत्या, कमीनापन और गंदे जीवनके बारीक-से-बारीक साधनोंकी शिक्षा दी जा रही है। इस प्रकार जनताके उच्च मनोभावों एवं

सौन्दर्यभावनाको नष्ट किया जा रहा है। अखबारोंके हास्य-स्तम्भ भी हत्या, अपहरण, डकैती आदि घटनाओंको सामान्य जीवनकी मान्यता देकर जनतामें अपराधी मनोवृत्तिको बढ़ावा दे रहे हैं। ऐसी स्थितिमें यदि सारे देशमें हिंसा और अपराधोंकी बीमारी फैल रही है तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

मुझे मालूम हुआ है कि बहुत-से युवक हजरतगंजमें लखनऊकी मुख्य सड़कपर ऐसे बुशकोट पहने हुए, जिनपर सिनेमा-स्टारोंके भद्दे चित्र या गंदे डिजाइन छपे होते हैं, मटरगश्ती किया करते हैं। मुझे बताया गया है कि इनमें विश्वविद्यालयके छात्र भी शामिल हैं, मुझे इसपर विश्वास नहीं होता। एक शिक्षित और सम्भ्रान्त परिवारका व्यक्ति इस प्रकारकी फूहड़ वेश-भूषामें सार्वजनिक सड़कोंपर कैसे निकल सकता है।

उत्तर प्रदेशके शिक्षामन्त्री श्रीहरगोविन्दसिंहजी

[कुछ दिन हुए बम्बई-मेलसे यात्रा करती हुई सिनेमाकी एक अभिनेत्रीको देखनेके लिये इलाहाबादके स्टेशनपर हजारों आदमी एकत्र हो गये। उनमें विद्यार्थियोंकी संख्या बहुत थी। आधा घंटा गाड़ीको रुकना पड़ा। आतुर सिनेमा-प्रेमियोंने जिस डिब्बेमें अभिनेत्री बैठी थी, उसके शीशेकी खिड़कियोंको तोड़ डाला, जयके नारे लगाये। इस उत्पातमें चार व्यक्ति घायल भी हो गये। किसी महात्मा, महापुरुष या देशके विशिष्ट नेताके दर्शनार्थ लोगोंका जमा होना जैसे उनकी नैतिकताको सिद्ध करता है, वैसे ही केवल नाच-गान तथा भाव व्यक्त करनेमें चतुर नाना प्रकारकी कमजोरियोंसे भरी हुई किसी एक नटीके दर्शनार्थ भीड़का इकट्ठा होना और उत्पात मचाना नैतिकताके निम्नस्तरका और असंयमके नग्न नृत्यका मूर्तिमान् प्रदर्शन कराता है ! इसी

दुर्भाग्यका उल्लेख करते हुए उत्तर प्रदेशके शिक्षामन्त्री श्रीहरिगोविन्दसिंहजीने कहा—]

××××××× लखनऊमें बैठकर विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त विद्यार्थियोंकी कृतियोंके समाचार सुनकर मैं मारे शर्मके गड़ जाता हूँ। इलाहाबादके स्टेशनपर कामिनीकौशल (सिनेमाकी एक नटी)-की जयके नारे लगाकर विद्यार्थियोंने जिस शिक्षा और नैतिक स्तरका परिचय दिया है, क्या वही आजकलकी शिक्षाका उद्देश्य है? यदि हाँ, तो मैं समस्त विश्वविद्यालयों और कॉलेजोंको सदैवके लिये बन्द किया जाना ही श्रेयस्कर समझूँगा। क्या हम 'कामिनीकौशलकी जय' बोलनेके लिये ही उन्हें तैयार कर रहे हैं? एक दिन मैंने नैनीतालमें देखा कि विद्यार्थियोंकी बड़ी भीड़ चली जा रही है। पूछनेपर मालूम हुआ कि किसी सिनेमागृहमें एक प्रसिद्ध ऐक्ट्रेस आयी हुई थी। आजकलके विद्यार्थियोंको फिल्म अभिनेताओंके जीवनकी प्रत्येक बात मालूम है, परंतु अपने देशके इतिहास और अपने नेताओंके सम्बन्धमें उनका ज्ञान एकदम शून्य पड़ा है।

साधनमें एक विघ्न है परदोष दर्शन। साधकको इस बातसे कुछ भी प्रयोजन नहीं रखना चाहिये कि 'दूसरे क्या करते हैं।' साधकको अपनी साधनाके कार्यसे इतनी फुरसत ही नहीं मिलनी चाहिये जिससे वह दूसरेका एक दोष भी देख सके। जिन लोगोंमें दूसरोंके दोष देखनेकी आदत पड़ जाती है वे साधन-पथपर स्थिर रहकर आगे नहीं बढ़ सकते। जब दोष दीखते ही नहीं तब उनकी आलोचना करनेकी तो कोई बात ही नहीं रह जाती। दोष अपने देखने चाहिये।

(**साधन-पथ** नामक पुस्तकसे)

अपने मनके विरुद्ध शब्द सुनते ही किसीकी नीयतपर सन्देह करना उचित नहीं।······अगर आप दूसरेको चुपचाप बैठाकर अपनी बात सुनाना और समझाना पसंद करते हैं तो इसी तरह उसकी बात सुननेके लिये आपको भी तैयार रहना चाहिये।

(**आनन्दकी लहरें** नामक पुस्तकसे)

नाथ! मैं एक बात पूछता हूँ; मैं बारम्बार अपराधकी कालिमा लगाता हूँ और बार-बार तुम उसे धोते हो! क्या इससे यह अच्छा नहीं कि मैं अपराध करूँ ही नहीं। तुम कहोगे—'मत करो, कौन कहता है करो।' पर नाथ! यह जानते हुए भी कि मेरे स्वामी मुझ नगण्यको धोया-पोंछा रखनेके लिये कितने सतत सावधान और प्रयत्नशील रहनेको बाध्य होते हैं, मैं स्वभाववश अपराध करता ही रहता हूँ। दयामय! अब यह तुम्हारे ही किये दूर होगा। मेरी यह प्रार्थना अवश्य पूरी कर दो मेरे दयार्णव!

(**प्रार्थना** नामक पुस्तकसे)

जिस प्रकार अग्निमें दाहिकाशक्ति स्वाभाविक है, उसी प्रकार भगवन्नाममें पापको—विषय-प्रपंचमय जगत्के मोहको जला डालनेकी शक्ति स्वाभाविक है। इसमें भावकी आवश्यकता नहीं है। किसी भी प्रकार नाम जीभपर आना चाहिये, फिर नामका जो स्वाभाविक फल है, वह बिना श्रद्धाके भी मिल ही जायगा। तर्कशील बुद्धि भ्रान्त धारणा करवा देती है कि बिना भावके क्या लाभ होगा। पर समझ लो ऐसा सोचना अपने हाथों अपने गलेपर छुरी चलाना है। नाम भगवत्स्वरूप ही है। नाम अपनी शक्तिसे, नाम अपने वस्तुगुणसे सारा काम कर देगा। विशेषकर कलियुगमें तो भगवन्नामके सिवा और कोई साधन ही नहीं है।

(**सत्सङ्गके बिखरे मोती** नामक पुस्तकसे)

जिस प्रकार स्त्रियोंका जेलकी काल-कोठरीकी तरह बंद रहना उसके लिये हानिकार है, उसी प्रकार—वह उससे भी बढ़कर हानिकर उनका स्त्रियोचित लज्जाको छोड़कर पुरुषोंके साथ निरंकुशरूपसे घूमना-फिरना, पार्टियोंमें शामिल होना, पर-पुरुषोंसे निःसंकोच मिलना, सिनेमा तथा गंदे खेल-तमाशोंमें जाना, पर-पुरुषोंके साथ खान-पान तथा नृत्यगीतादि करना आदि है। नारीके पास सबसे मूल्यवान् और आदरणीय सम्पत्ति है उसका सतीत्व। सतीत्वकी रक्षा ही उसके जीवनका सर्वोच्च ध्येय है।

(**नारी-शिक्षा** नामक पुस्तकसे)